जनसत्ता

आतंक का दायरा

जिस दौर में पूरी दुनिया एक व्यापक और जटिल आतंकवाद की समस्या से जूझ रही है, उसमें किसी ऐसे व्यक्ति को आतंकियों के साथी के रूप में गिरफ्तार किया जाता है, जिसे आतंकवादियों से निपटने की जिम्मेदारी सौंपी गई थी, तो यह समझा जा सकता है कि इस समस्या की चुनौती कितनी गहरी है। खासतौर पर भारत ने आतंकवाद की पीड़ा जिस स्तर तक झेली है, वह किसी से छिपा नहीं है। लेकिन आतंकियों का सामना करने के लिए सरकार ने हर स्तर पर चौकसी बरती और यही वजह है कि आज आतंकवादियों के हौसले कमजोर हुए हैं। विडंबना यह है कि देश ने सुरक्षा व्यवस्था के तहत जिन लोगों को आतंकियों का सामना करने के लिए तैनात किया है, उनमें से ही कुछ लोग आतंकवादियों के साथी के तौर पर काम कर रहे थे। हालांकि देश का सुरक्षा तंत्र फिलहाल इतना चौकस है कि इसमें न केवल आतंकियों, बल्कि प्रच्छन्न रूप से उनका साथ देने वाले भी पकड़ में आ जाते हैं। गौरतलब है कि सोमवार को आई एक खबर के मुताबिक दक्षिण कश्मीर के कुलगाम इलाके में खुफिया सूचना मिलने के बाद शुरू किए गए सुरक्षा अभियान के दौरान जम्मू-कश्मीर में तैनात पुलिस उपाधीक्षक रैंक के एक अधिकारी को हिजबुल मुजाहिदीन के दो आतंकवादियों के साथ गिरफ्तार किया गया। तीनों एक ही वाहन में पकड़े गए और आशंका है कि वे किसी आतंकी वारदात को अंजाम देने के मकसद से कहीं जा रहे थे।

इससे ज्यादा अफसोस की बात और क्या होगी कि जिस पुलिस अफसर को पिछले साल श्रेष्ठ सेवाओं के लिए राष्ट्रपति पदक से सम्मानित किया गया था, उसके आतंकवादियों के साथ मिले होने की बात सामने आई। बेशक अभी गहन जांच के बाद स्थितियां और स्पष्ट होंगी कि पकड़ा गया डीएसपी किस स्तर तक इस आरोप में सहभागी था, लेकिन इससे इतना तो साफ हुआ ही है कि जिस तंत्र के बूते हमारे देश में एक बड़ी चुनौती का सामना करने का दावा किया जा रहा है, उसके भीतर भी कई तरह के खतरे मौजूद हैं। यों जांच के दायरे में शायद सामने आया एक और तथ्य हो कि संसद पर हमले के लिए मौत की सजा पा चुके एक आतंकवादी ने अपनी चिट्ठी में इसी अफसर पर मिलीभगत की अंगुली उठाई थी। इसका बस अंदाजा भर लगाया जा सकता है कि एक ओर समूचे देश में आतंकी तत्त्वों से निपटने के लिए एक चौकस तंत्र का गठन किया जा रहा है, संसाधन झोंके जा रहे हैं, दूसरी ओर उसी तंत्र में बैठा कोई व्यक्ति आतंकवादियों का मददगार निकल आता है।

हालांकि यह बेहद अफसोसनाक स्थिति है और देश के सुरक्षा तंत्र में एक बड़ी कोताही का सबूत भी कि उच्च पद पर बैठा पुलिस अधिकारी खुद ही आतंकियों के साथ पकड़ा गया। निश्चित तौर पर यह किसी इक्का-दुक्का पुलिस अफसर के आतंकियों के साथी के तौर पकड़े जाने का मामला है और उम्मीद यही की जानी चाहिए कि सुरक्षा बलों में आज भी इतनी विश्वसीयता कायम है कि वे देश की सुरक्षा जैसे सबसे संवेदनशील मसले पर कोई चूक बर्दाश्त नहीं करेंगे। इसके बावजूद यह समझना मुश्किल है कि इतने समय तक यह अफसर खुद उस महकमे में उच्च पद पर कैसे बना रहा, जिसका काम ही आतंकवादियों का सामना करना और खुफिया सूचनाएं हासिल कर देश के अर्धसैनिक सुरक्षा बलों को प्रेषित करना है। आखिर उसके बारे में खुफिया तंत्र को कोई सूचना कैसे नहीं मिल सकी और कैसे वह इतने समय से ऐसे काम में लगा हुआ था? क्या खुफिया सूचनाएं हासिल करने के इसी स्तर के बूते देश के सुरक्षा बल आतंकवाद से अपनी लड़ाई लड़ रहे हैं?

कर्ज माफी का बोझ

किसानों की कर्ज माफी अर्थव्यवस्था पर किस कदर भारी पड़ती जा रही है, इसका पता इस तथ्य से चलता है कि पिछले एक दशक में किसानों के करीब पौने पांच लाख करोड़ के कर्ज माफ कर दिए गए। इसमें दो लाख करोड़ रुपए तो पिछले दो साल में माफ किए गए। क्या यह गंभीर चिंता का विषय नहीं होना चाहिए कि एक तरफ तो हम किसानों के कर्ज माफ करते जा रहे हैं, लेकिन किसान की हालत में कोई सुधार नहीं हो रहा है। ऐसे तो कर्ज देने और माफ करने का चक्र कभी टूटने वाला नहीं। किसानों की कर्ज माफी को लेकर एसबीआइ रिसर्च की ताजा चौंकाने वाली है। इसमें साफ कहा गया है कि पिछले एक दशक में जितनी रकम किसानों को कर्ज के रूप में बांट दी गई है, वह देश के उद्योग जगत के फंसे हुए कर्ज यानी एनपीए का बयासी फीसद है। जाहिर है, अगर कुछ समय और किसानों को कर्ज माफी का यह झुनझुना थमाया जाता रहा है तो देश के समक्ष एनपीए का एक और पहाड़ खड़ा हो जाएगा।

किसानों की कर्ज माफी को लेकर पहले भी सवाल उठते रहे हैं। विशेषज्ञों का मानना रहा है कि किसानों की दशा सुधारने के लिए कर्ज माफी कोई स्थायी समाधान नहीं है। इससे न तो किसानों की समस्याएं ही दूर हो पाती हैं, बल्कि सरकारी खजाने पर बोझ और बढ़ता चला जाता है। भारत में यह हमेशा की समस्या रही है कि कर्ज माफी को हमारे राजनीतिक दल और सरकारें किसानों के वोट हासिल करने के हथियार के रूप में इस्तेमाल करते आए हैं। लेकिन किसान की बुनियादी समस्याओं के समाधान की दिशा में कोई कारगर प्रयास शायद ही हुआ हो। इसलिए भारत का किसान खासतौर से छोटे सीमांत किसान आज भी उसी हालत में हैं जो दशकों से चली आ रही है। पिछले दो साल में आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, पंजाब, छत्तीसगढ़ और राजस्थान में किसानों के कर्ज माफ होते रहे। अगर देश के कृषि क्षेत्र के लिए उचित नीतियां बनतीं और लागू होतीं तो आज भारत के करोड़ों किसान दयनीय हालत में नहीं होते और आत्महत्या करने को मजबूर नहीं होते। कृषि कर्जमाफी के आंकड़े बता रहे हैं कि पिछले वित्त वर्ष यानी 2018-19 में कृषि कर्ज का एनपीए एक लाख करोड़ रुपए से निकल गया था, जो इस वक्त देश के सभी वित्तीय संस्थानों के कुल एनपीए 8.79 लाख करोड़ का साढ़े बारह फीसद बैठता है। नतीजे में सिर्फ यही कहा जा सकता है कि किसानों के लिए पैसा तो बहाया जा रहा है, पर वह बेकार जा रहा है।

दो साल पहले नीति आयोग और रिजर्व बैंक तक ने भी किसानों के कर्ज माफ करने को लेकर अपनी असहमति जताई थी। नीति आयोग ने तब साफ कहा था कि कर्ज माफी का फायदा एक सीमित वर्ग जो दस-पंद्रह फीसद से ज्यादा नहीं है, को ही पहुंचता है, इसलिए इसे किसानों की समस्या के हल में रूप में देखना व्यावहारिक नहीं है। रिजर्व बैंक भी किसानों के कर्ज माफ करने के पक्ष में इसलिए नहीं रहा है, क्योंकि बड़े पैमाने पर कृषि कर्ज माफी से सरकारी खजाने पर बोझ तो पड़ता ही है, महंगाई भी बढ़ती है। किसानों की मदद लिए बेहतर रास्ता यह हो सकता है कि उन्हें कर्ज माफी जैसी सुविधा के बजाय खेती की जरूरत का सामान मुहैया कराया जाए। ऐसी दूरगामी योजनाएं बनें जिनसे किसान आर्थिक रूप से स्वावलंबी बन सके और उसे कर्ज की जरूरत ही न पड़े।

कल्पमेधा

कला की कीमत नतीजे से नहीं,
उसके कलात्मक गुणों से
आंकी जाती है।
- गोर्की

चुनौती बनती मानसिक बीमारियां

मोनिका शर्मा

भारत में तैंतालीस फीसद लोग ही मानसिक बीमारियों के इलाज के लिए अस्पताल जाने की जरूरत महसूस करते हैं। दूरदराज के गांवों-कस्बों में तो ऐसी बीमारी को अंधविश्वास तक से जोड़ दिया जाता है। ऐसे में न केवल मानसिक स्वास्थ्य से जुड़ी चिकित्सकीय सेवाओं की पहुंच बढ़ाने की दरकार है, बल्कि इन व्याधियों के प्रति जन-जागरूकता लाने की की जरूरत है।

भारत में मानसिक स्वास्थ्य से जुड़ी समस्याएं गंभीर रूप लेती जा रही हैं। इस बारे में हाल में लांसेट साइकियाट्री में 'इंडिया स्टेट लेवल डिजीज बर्डन इनिशिएटिव' द्वारा किया गया अध्ययन छपा है, जो देश में मानसिक स्वास्थ्य से जुड़े चिंताजनक हालात सामने रखता है। इस अध्ययन के अनुसार वर्ष 2017 में करीब बीस करोड़ भारतीय मानसिक विकारों से ग्रस्त पाए गए। इनमें हर सात में से एक भारतीय अलग-अलग तरह की मानसिक बीमारी से पीड़ित निकला। मानसिक रोगों की इस फेहरिस्त में अवसाद, व्यग्रता, सीजोफ्रेनिया, विकास संबंधी बौद्धिक विकृति, आचरण संबंधी विकार और ऑटिज्म जैसी बामरियां शामिल हैं। इनमें अवसाद और व्यग्रता सबसे आम मानसिक विकार हैं। इतना ही नहीं, ये दोनों मानसिक व्याधियां भारत में तेजी से फैल रही हैं। अध्ययन के मुताबिक दो साल पहले तक साढ़े चार करोड़ से ज्यादा लोग अवसाद से ग्रस्त थे। गौरतलब है कि यह अध्ययन मानसिक रोगों के कारण देश पर बीमारियों के बढ़ते बोझ और हर राज्य में इन समस्याओं के रुख को लेकर सामने आया पहला व्यापक अनुमान है। इसके मुताबिक साल 1990 से साल 2017 के बीच भारत में बीमारियों के कुल बोझ में मानसिक बीमारियों का योगदान बढ़ कर दोगुना हो गया। ऐसे में मन की सेहत बिगड़ने से जुड़ी ऐसी स्थितियां समाज और सरकार दोनों के लिए बेहद चिंतनीय हैं।

दरअसल, बीते कुछ सालों में लोग शारीरिक स्वास्थ्य को लेकर काफी सजग तो हुए हैं, लेकिन मानसिक सेहत संभालने की प्रवृत्ति आज भी नदारद है। इतना ही नहीं, बिगड़ी मनःस्थिति के मर्ज को स्वीकारने में भी संकोच किया जाता है। ऐसे में अपनी हो या किसी अपने की, अवसाद और व्यग्रता को छुपा कर और बड़ी बीमारी बना दिया जाता है। जबकि आज की बदलती जीवनशैली में तनाव और अवसाद घर से लेकर दफ्तर तक जीवन का हिस्सा बन गए हैं। भागमभाग ही कुछ ऐसी है कि बच्चों से लेकर बुजुर्गों तक, सभी मन की सेहत के मोर्चे पर पीछे छूट रहे हैं। एक सर्वे से मुताबिक भारत में तियालीस फीसद लोग ही मानसिक बीमारियों के इलाज के लिए अस्पताल जाने की जरूरत महसूस करते हैं। दूरदराज के गांवों-कस्बों में तो ऐसी बीमारी को अंधविश्वास तक से जोड़ दिया जाता है। ऐसे में न केवल मानसिक स्वास्थ्य से जुड़ी चिकित्सकीय सेवाओं की पहुंच बढ़ाने की दरकार है, बल्कि इन व्याधियों के प्रति जन-जागरूकता लाने की की जरूरत है।

असल में देखा जाए तो मानसिक स्वास्थ्य से जुड़े आंकड़े अब वैश्विक चिंता बन गए हैं। आज दुनियाभर में पैंतालीस करोड़ से भी अधिक लोग मानसिक रोगों से ग्रस्त हैं। हमारे यहां भी एक बड़ी आबादी मानसिक अस्वस्थता से जूझ रही है। कभी विकसित देशों की समस्या कही जाने वाली ये मानसिक व्याधियां अब भारत में भी तेजी से जड़ें जमा रही हैं। आंकड़ों को देखें तो साल 2017 में करीब बीस करोड़ भारतीयों का मानसिक विकारों से ग्रस्त होना देश के लिए एक बड़ी चिंता का विषय है, क्योंकि यह हमारी कुल आबादी की 14.3 फीसद है। राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य सर्वे 2015-16 के आंकड़े बताते हैं कि देश में अठारह साल से अधिक उम्र वाले 5.25 फीसद नौजवान अवसाद के शिकार हैं। यानी हर बीस में से एक व्यक्ति को अवसाद ने घेर रखा है। बच्चों में भी तनाव, व्याकुलता और आत्मविश्वास में कमी जैसी मानसिक समस्याएं तेजी से बढ़ रही हैं। इसके चलते नई पीढ़ी में कम उम्र में ही कई शारीरिक और मानसिक बीमारियां होने का जोखिम भी बढ़ रहा है।

हाल के वर्षों में भारत में आत्महत्या के आंकड़े भी तेजी से बढ़े हैं। हर उम्र, हर तबके के लोगों में जीवन से हार मान की लेने की प्रवृत्ति देखने को मिल रही है। हालांकि आत्महत्या की प्रवृत्ति दुनिया भर में देखने को मिल रही है, लेकिन हमारे देश के लिए ये एक बड़ी चुनौती है, क्योंकि किसानों से लेकर शिक्षित युवाओं तक हर वर्ग के लोग जिंदगी से मुंह मोड़ रहे हैं। पिछले कुछ सालों में तो सामूहिक आत्महत्या के मामले भी सामने आए हैं, जिनमें निराशा और असुरक्षा की भावना के चलते पूरे परिवार ने ही आत्मघाती कदम उठा लिया। मन को उद्वेलित करने वाले ऐसे मामलों में घर के बड़े-बुजुर्गों से लेकर बच्चों तक ने एक साथ मौत को गले लगा लिया। अधिकतर मामलों में तनाव और अवसाद ही अहम कारण रहा है, जो व्यावसायिक अफसलता, कर्ज, और सामाजिक-पारिवारिक कलह जैसी वजहों से पनपता है। कुछ समय पहले आई विश्व स्वास्थ्य संगठन

की 'प्रिवेंटिंग सुसाइड' नामक रिपोर्ट में भी कहा गया था कि दुनिया भर में सबसे अधिक आत्महत्या के मामले भारत में हो रहे हैं। आर्थिक समृद्धि की दौड़ के बीच गुम अनमोल मानवीय जीवन के अवमूल्यन को सामने रखती इस रिपोर्ट में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने (डब्लूएचओ) आत्महत्या को एक सार्वजनिक स्वास्थ्य समस्या के तौर पर रेखांकित किया था। डब्लूएचओ की इस रिपोर्ट में भारत को आत्महत्या के मामले में दुनिया की राजधानी तक कहा गया। ऐसे में मानसिक विकारों के शिकार लोगों की बढ़ती संख्या वाकई चिंतनीय है, क्योंकि इस अध्ययन में आत्महत्या और मानसिक बीमारी के बीच सीधा संबंध पाया गया है। रिपोर्ट के मुताबिक मानसिक रूप से बीमार लोग आत्महत्या के ज्यादा प्रयास करते हैं। मानसिक रूप से बीमार महिलाएं पुरुषों की तुलना में आत्महत्या के ज्यादा प्रयास करती हैं।

विचारणीय है कि हमारे देश की पारंपरिक जीवनशैली संयमित और सहज जीवन जीने का संदेश लिए हुए है। दिखावे के संस्कृति से दूर, जरूरतों और इच्छाओं में अंतर करने का भाव गहराई से समाहित है। कहना गलत नहीं होगा कि आज की बदलती जीवन शैली के चलते ही अवसाद और व्यग्रता जैसी समस्याएं दस्तक दे रही हैं। मौजूदा जीवनशैली में दो बातें बहुत आम हो चली हैं। एक, सब कुछ पा लेने की की इच्छाएं बढ़ी हैं और दूसरा यह कि हालात से मुकाबला करने की शक्ति कम हुई है। सहिष्णुता और सहनशीलता व्यवहार से नदारद है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) के सर्वे में भी यही सामने आया है कि आत्महत्या करने वाले लोगों में अधिकतर पंद्रह से पैंतीस साल के बीच के नौजवान ज्यादा हैं, जिन पर इस आयु में रोजगार पाने और स्वयं को साबित कर दिखाने का दवाब होता है। युवाओं का एक बड़ा प्रतिशत ऐसा भी है, जो शिक्षित और सफल तो है, पर अवसाद और अकेलेपन के चलते आत्महत्या जैसे कदम उठा रहा है। एक रिपोर्ट के मुताबिक भारत के आईटी हब के तौर पर मशबूर बंगलुरू में आत्महत्या करने वालों की संख्या देश में सबसे अधिक है। यहां अकेलापन और अवसाद जान देने के बड़े कारण हैं। 'इंडिया स्टेट लेवल डिजीज बर्डन इनिशिएटिव' की रिपोर्ट भी बताती है कि नौकरी में अनिश्चितता, वैवाहिक स्थितियां और आर्थिक चिंताओं ने लोगों को अवसाद और तनाव की धकेला है।

निस्संदेह, मानसिक रुग्णता से जुड़ी व्याधियों के आंकड़े साल दर साल बढ़ रहे हैं। हमारा सामाजिक तानाबाना ही कुछ ऐसा है कि इसमें तनाव और उलझनें कम नहीं हैं। जीवन की आपाधापी में तनावजन्य परिस्थितियों में इजाफा हुआ है। सामाजिक तानेबाने के टूटने और एकाकी परिवारों के बढ़ते चलन ने ऐसे रोगियों की संख्या बढ़ा दी है, जो मन से बीमार हैं। बिगड़ती मनोदशा के कारणों में पारिवारिक समस्याओं का भी अहम स्थान है। राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण 2015-16 के आंकड़े बताते हैं कि भारत की आबादी के करीब चौदह फीसद लोगों को सक्रिय मानसिक स्वास्थ्य हस्तक्षेप की आवश्यकता है। जबकि पहले से ही स्वास्थ्य सेवाओं के जर्जर ढांचे से जूझ रहे हमारे देश में मानसिक रोगियों की समस्याओं का समाधान करने के लिए स्वास्थ्य पेशेवरों की भी भारी कमी है। ऐसे में भारत के बदलते सामाजिक-आर्थिक ढांचे में मनोविकारों से जूझ रहे लोगों के बढ़ती तादाद चिंता का विषय है।

सितारे जमीन पर

अरविंद दास

दुनिया मेरे आगे

हमारे देश में सिनेमा महज मनोरंजन का मुख्य स्रोत नहीं है, बल्कि 'पॉपुलर संस्कृति' का हिस्सा भी है। सिनेमा के कलाकारों को सितारों का दर्जा हासिल है। ये सेलिब्रेटी माने जाते हैं। बॉलीवुड से लेकर दक्षिण भारत के सिनेमा के सितारे अपनी इस छवि की बदौलत राजनीति के क्षेत्र में भी उतरे, जिनमें कई सफल रहे और कई नाकाम। जहां एमजी रामचंद्रन, जयललिता आदि काफी सफल रहीं, वहीं अमिताभ बच्चन जैसे अभिनेता असफल रहे। पिछले कुछ समय से रजनीकांत और कमल हासन जैसे अभिनेता राजनीति में हाथ आजमाने की कोशिश कर रहे हैं।

मुख्यधारा की राजनीति में रहते हुए ये सितारे भले ही सामाजिक और राजनीतिक मुद्दों पर अपनी राय जाहिर करें, मगर आमतौर पर ये चुप ही रहते हैं। इसका कारण भी स्पष्ट है। सिनेमा एक व्यवसाय है, जिसमें बड़ी पूंजी दांव पर लगी रहती है। साथ ही ये कई कंपनियों के 'ब्रांड एंबेसडर' होते हैं और कई सरकारी विज्ञापनों में भी शामिल होते हैं। ऐसे में राजनीतिक पक्षधरता का खुल कर जाहिर करना कारोबार के लिए जोखिम भरा हो सकता है। पिछले दिनों चर्चित अभिनेत्री दीपिका पादुकोण ने जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय जाकर विद्यार्थियों से मिली और उनके साथ अपनी कुछ देर की मौजूदगी दर्ज की। दरअसल, जेएनयू पिछले कुछ महीनों से संघर्ष का परिसर बना हुआ है। जेएनयू में मौजूद दीपिका की तस्वीर सोशल मीडिया में खूब वायरल हुई। इसके बाद यह स्वाभाविक ही था कि कुछ लोगों ने उनकी तारीफ की, वहीं उन्हें 'ट्रोल' भी किया गया। लोगों ने इसे हाल ही में रिलीज हुई 'छपाक' फिल्म के प्रचार से भी जोड़ा।

दरअसल, नागरिकता संशोधन कानून (सीएए) और राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर (एनआरसी), जामिया-जेएनयू में हुई हिंसा के खिलाफ विरोध पूरे देश में विश्वविद्यालयों के परिसर से लेकर सड़कों पर दिखाई पड़ रही है। इसमें बॉलीवुड के कई कलाकार और निर्देशक भी शामिल हैं। अनुराग कश्यप जैसे कुछ फिल्म निर्देशक तो काफी मुखर हैं। यों फिल्म दुनिया की कुछ हस्तियों ने सीएए का समर्थन भी किया। यों किसी भी आंदोलन में युवाओं-विद्यार्थियों की अग्रणी भूमिका रही है। पिछले दिनों दिल्ली में हो रहे प्रदर्शनों में पुलिस की लाठी से एक पुरुष मित्र को बचाती दो छात्राओं और पुलिस को गुलाब का फूल देती एक छात्रा की तस्वीर काफी वायरल हुई। इस पूरे दौर में हिंसा के खिलाफ छात्र-छात्राओं ने विरोध प्रदर्शन में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया।

आजादी के आंदोलन से लेकर इस दशक की शुरुआत में भ्रष्टाचार के खिलाफ हुए प्रदर्शन आदि में छात्र-छात्राओं और युवाओं ने आगे बढ़ कर भागीदारी की थी। आपातकाल के दौरान किशोर कुमार, देवानंद और मनोज कुमार जैसे कलाकारों ने सरकार के खिलाफ अपना विरोध दर्ज किया था। सत्ताधारी दल के कई नेता और मंत्री आपातकाल के विरोध में हुए आंदोलनों में से ही निकले हैं। हाल ही में दिवंगत हुए राकांपा के नेता और जेएनयू छात्रसंघ के अध्यक्ष रहे देवीप्रसाद त्रिपाठी आपातकाल के दौरान छात्र नेता के रूप में ही उभरे थे।

बहरहाल, कुछ दिन पहले दफ्तर में बैठा खबरों में उलझा था और नजर टीवी स्क्रीन पर थी कि अचानक अपनी धुन में बांसुरी बजाते एक युवा की आवाज कानों में पड़ी। धुन इस गीत की थी- 'थोड़ा सा प्यार हुआ है, थोड़ा है बाकी'। बांसुरी की आवाज में इस फिल्मी गाने में एक कशिश थी। कवि वीरेन डंगवाल के शब्दों में- गोया एक फरियाद है अजान-सी। साहित्य हो या सिनेमा वह सामाजिक यथार्थ के चित्रण के साथ प्रेम और सामाजिक सौहार्द की ही बात करता है।

प्रसंगवश, सड़कों पर निकले जुलूस में 'हर जोर जुल्म के टक्कर में संघर्ष हमारा नारा है', और 'तू जिंदा है तो जिंदगी की जीत में यकीन कर' जैसे गाने खूब सुनाई दिए। इसे हिंदी फिल्मों के चर्चित गीतकार शैलेंद्र ने लिखा है। हालांकि जिस दौर में शैलेंद्र ने इसे लिखा था, वह दौर अलग था। बॉलीवुड में 'इप्टा' की पृष्ठभूमि से आए निर्देशक-अभिनेता और प्रगतिशील लेखक संघ से जुड़े लेखक-गीतकार काफी सक्रिय थे। इनमें से कई लोगों की राजनीतिक पक्षधरता स्पष्ट थी।

सिनेमा से जुड़े लेखक या सितारे इसी समाज के हिस्से हैं और जाहिर है कि समाज की हलचलों से वे दूर नहीं रह सकते। अगर कुछ युवा सितारे व्यापक महत्त्व के मुद्दों पर अपनी दखल दर्ज कर रहे हैं तो उनकी आवाज को लोकतंत्र की मजबूती के रूप में देखना चाहिए। हॉलीवुड में ऐसे सितारों, फिल्म निर्देशकों की लंबी परंपरा रही है जो राजनीतिक घटनाक्रमों पर तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करते रहे हैं। तीन साल पहले ऑस्कर पुरस्कार से सम्मानित अभिनेत्री मेरिल स्ट्रीप ने गोल्डन ग्लोब पुरस्कार समारोह के दौरान राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप पर जम कर निशाना साधा था और खरी-खोटी सुनाई थी।

असल में लंबे समय से पॉपुलर संस्कृति का इस्तेमाल राजनीतिक प्रतिरोध के रूप में होता रहा है। आखिरकार सिनेमा एक सांस्कृतिक उत्पाद है, जो अपने समय के यथार्थ को कलात्मक ढंग से रचता है। पिछले दिनों विद्यार्थियों के प्रदर्शन से प्रेरित होकर सुधीर मिश्रा ने ट्विटर पर लिखा कि वे अपनी पहली फिल्म 'ये वो मंजिल तो नहीं' का 'रिमेक' बनाएंगे। गौरतलब है कि 1987 में आई यह फिल्म भी छात्र-राजनीति के इर्द-गिर्द थी, जिसे राष्ट्रीय पुरस्कार मिला था।

अपारदर्शिता का चंदा

भारत को आजादी हासिल किए सत्तर साल से आधिक हो गए हैं। न केवल भारत के लोग, बल्कि वे लोग भी जिन्होंने देश को आजाद कराया था, उनकी आकांक्षा थी कि इस देश कि राजनीति एक आदर्श की तरह होगी और संविधानसम्मत चलेगी, अपने नागरिकों का उत्तम खयाल रखेगी। इतना ही नहीं, विपक्ष से भी यही उम्मीद थी कि उनकी तरफ से भी विरोध होगा, लेकिन अपनी महत्त्वाकांक्षाओं के लिए नहीं, बल्कि सत्ता पक्ष की गलत दिशा और दशा से युक्त नीतियों पर। लेकिन आज सत्ता पक्ष सोच रहा है कि संसद में हमारा हर तरफ से बहुमत हो, ताकि हम आसानी से मनमाना कानून बना सकें, वहीं विपक्ष को नकारात्मक विरोध से मौका नहीं मिल रहा। किसी भी देश के लिए विपक्ष लोकतंत्र और उसके नागरिकों के लिए तीसरी आंख से कम नहीं होती, क्योंकि सही रास्ता दिखाना और उचित नीतियों के बारे में दिशानिर्देश देना विपक्ष का कर्तव्य होता है।

आज सरकार खुल कर और एक अग्रगामी रूप में अपने नागरिकों के लिए बेहतर और समावेशी विकास की रणनीति इसलिए नहीं ला पा रही है और न इसे अच्छी तरीके से लागू कर पा रही है। राजनीति को आज स्वतंत्र नहीं रहने दिया गया है, क्योंकि सभी पार्टियां तो चंदे देने वाले के इशारे से चलती है। इसका अगर एक उदाहरण देखा जाए तो जैसे एक बड़ी कंपनी जो कीटनाशक का उत्पादन कर रही है और इसका कारोबार भारत में अच्छे से चल रहा है, लेकिन धीरे-धीरे एक लहर आती है कि अब कार्बनिक और जैविक खेती करना होगा, अन्यथा हमारा पर्यावरण और हमारे अपने खुद ही अस्वस्थ होकर काल के मुंह में जाने लगेंगे। अब लोगों ने सोचा कि इस अच्छी पहल पर सरकार भी हमारी बढ़-चढ़ कर मदद करेगी।

लेकिन उनको कहां पता था कि वोट से बढ़ कर मूल्य चंदा का होता है। अब अगर सरकार जैविक खेती को बढ़ावा दे तो उधर कीटनाशक कंपनी नाराज हो जाएगी और सरकार पर दबाव बनाएगी। ऐसी स्थिति में सरकार को जनता के सामने कुछ पत्ते खेलना होगा, इधर का मुद्दा उधर, उधर का इधर! इस राजनीतिक चंदे पर विशेष रूप से समीक्षा करके इसको पूर्ण पारदर्शी बनाना होगा। राजनीतिक दलों का पूरा लेन-देन और चुनावी व्यवस्था पारदर्शी होगी, तभी लोकतंत्र जिंदा रह पाएगा।

● *कुंदन वर्मा, बहराइच, उत्तर प्रदेश*

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

प्रदूषण के विरुद्ध

'प्रदूषण के उपाय' (संपादकीय, 6 जनवरी) पढ़ा। भारत में दिल्ली और एनसीआर के कई शहर विश्व के सर्वाधिक प्रदूषित शहरों में अग्रणी हैं। जाड़े की शुरुआत में दिवाली में यहां के शहरों में करोड़ों की संख्या में मुख्य रूप से फुलझड़ियों, चकरी पटाखों और अनार छोड़ने से भयंकर प्रदूषण की वजह से सांस लेना दूभर हो जाता है। आंखों में तेज जलन होने लगती है। पिछले वर्ष सुप्रीम कोर्ट ने दिल्ली, पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश के मुख्य सचिवों को तलब करके प्रदूषण नियंत्रण में अब तक उनके द्वारा की ढिलाई के लिए कड़ी फटकार लगाई थी।

सुप्रीम कोर्ट की कड़ी फटकार और नसीहत के बाद अब देश का पहला बीस फुट ऊंचा वायु प्यूरीफायर दिल्ली के लाजपतनगर में लगाया गया है, जो अपने आसपास 500 से 750 वर्ग मीटर क्षेत्रफल के छह लाख घनमीटर तक की पीएम 2.5, पीएम 10 पार्टिकल्स वाली प्रदूषित हवा को 75 प्रतिशत तक साफ करेगा। चूंकि दिल्ली जैसे बड़े महानगर के लिहाज से यह बहुत छोटा प्यूरीफायर है, इसलिए सरकार सौरचालित चीनी मेगा प्यूरीफायर की तर्ज पर बड़े सौर प्यूरीफायर बनाने की सोच रही है, जो 10 मिलियन क्यूबिक मीटर तक की हवा को प्रतिदिन साफ करेगा।

हमें वायु प्रदूषण कम करने के लिए कई स्तरों पर ईमानदारी से प्रयास करने होंगे। मसलन, हमें देश भर में अपने हरेक शहरों में आबादी के अनुसार वायु प्यूरीफायर तो लगाने ही होंगे, उसके साथ हमें विकसित और सभ्य देशों की तर्ज पर कारों, टैक्सियों, मोटर साइकिलों आदि पेट्रोल और डीजलचालित निजी वाहनों का कम से कम प्रयोग करके इनकी जगह विद्युतचालित बसों, ट्रामों, ट्रेनों और मेट्रो आदि का अधिकाधिक प्रयोग करना चाहिए। इसके अलावा, साइकिल के प्रयोग को भी बढ़ावा देना चाहिए। हमें अपने शहरों का पानी भी जल प्यूरीफायर या जल संशोधन संयत्रों से साफ करके ही अपनी नदियों में डालना चाहिए।

● *निर्मल कुमार शर्मा, गाजियाबाद*

हिंसा का रास्ता

हाल ही में जेएनयू में हुई हिंसक घटना चिंताजनक है। देश में कई शिक्षण संस्थानों में ऐसे हालात देखने को मिल रहे हैं। वे हालात आंदोलन से कम नहीं हैं। इससे पहले दिल्ली की जामिया मिल्लिया में इस तरह का मामला हो चुका है। वहां पुलिस की भूमिका नकारात्मक रूप में देखी गई। इस तरह की घटनाएं बढ़ती ही जा रही हैं। कहीं बदमाशों ने विद्यार्थियों पर गोलियां चलाईं तो कहीं उन पर लाठीचार्ज किया गया। अगर यही स्थिति बनी रही तो लोग बच्चों को पढ़ने के लिए स्कूल या कॉलेज भी नहीं भेजेंगे। अभी भीड़ में मुखौटों की संख्या ज्यादा दिख रही है। वे कहीं छात्रों तो कहीं बेटियों की इज्जत से खिलवाड़ कर रहे हैं।

इस सारे मामले में सरकार मौन दिख रही है। लगता है कि सरकार लोगों की बात को सुनने में हिचकिचा रही है। लेकिन अगर विद्यार्थी अपने भविष्य के लिए सड़क पर उतरे हैं तो सरकार को उनकी बात अवश्य सुननी चाहिए। वे यह लडाई अपने लिए नहीं, बल्कि भविष्य में आने वाले नस्लों के लिए भी लड़ रहे हैं। भारत में आर्थिक स्थिति के साथ लोगों की मानसिक स्थिति भी खराब होती जा रही है। लेकिन सरकार सब पर नजर नहीं डाल रही है। अगर मौजूदा असहमति को ठीक से नहीं सुलझाया गया तो आने वाले दिनों में नफरत का दायरा फैल सकता है। और उसके बाद कैसी तस्वीर बनेगी, उसका सिर्फ अंदाजा लगाया जा सकता है। जबकि भारत प्रेम और स्नेह फैलाने वाला देश है। हमारा नाम हिंसा के लिए खराब क्यों हो?

● *मो जमील, मधुबनी, बिहार*

www.readwhere.com